जे. कृष्णमूर्ति के शैक्षिक चिन्तन की प्रासंगिकता

* डॉ. अशोक कुमार सिडाना **रेवत सिंह

जे. कृष्णमूर्ति (1895-1985) की गणना आधुनिक युग के श्रेष्ठ चिन्तकों में की जा सकती है। उन्होंने अति मूल्यवान शिक्षा-दर्शन प्रदान किया, जिसके गम्भीर आध्यात्मिक और नैतिक परिणाम हो सकते हैं।

जे. कृष्णमूर्ति ने हर प्रकार की बाह्य प्रामाणिकता का निषेध किया चाहे वह परम्परा की हो, पुस्तक की हो या व्यक्ति की। उनके अनुसार धार्मिक सम्प्रदाय, संगठन, ग्रंथ या परम्परा या व्यक्ति विशेष द्वारा सत्य या यथार्थ का ज्ञान नहीं हो सकता। इसके लिये व्यक्ति को स्वयं प्रयत्न करना होगा। कृष्णमूर्ति ने बुद्धि, आत्मज्ञान, ध्यान तथा एकाग्रता पर अपने विचार प्रस्तुत किये है, जो शिक्षा पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालते हैं।

आत्मज्ञान-कृष्णमूर्ति के अनुसार आत्मज्ञान स्वयं को जानना है अर्थात् हम क्षण-क्षण क्या है अर्थात् विभिन्न क्षणों में हम जो अनुभव करते हैं, सोचते हैं तथा कार्य करते है-उन्हें जानना चाहिए। इसके लिये सजग तथा ध्यानयुक्त रहना तथा सतर्कता आवश्यक है। आत्मज्ञान का तात्पर्य अपरिवर्तनशील, अनश्वर तथा चेतन आत्मज्ञान का जानना नहीं है।

बुद्धि-कृष्णमूर्ति के अनुसार वास्तविक ज्ञान का साधन बुद्धि हीं है। विचार की उत्पत्ति मूलतः स्मृति से होती है। विचार अतीतपरक है तथा विज्ञानों को सम्बन्धित करता है जबकि बुद्धि उलझन, द्वन्द्व तथा कष्ट पैदा करती है। इसके द्वारा यथार्थ व सत्य से सम्पर्क नहीं हो सकता। यथार्थ को साधन, तप, योग या रहस्यानुभूति द्वारा भी नहीं जाना जा सकता। बुद्धि समझ को दुष्प्रभावित करती है। कल्पना भी यथार्थ से दूर करती है।

एकाग्रता-एकाग्रता में व्यक्तिविशेष संकल्पपूर्वक किसी वस्तु पर कुछ समय के लिये अपना मन लगाने का प्रयत्न करता है और प्रयत्नपूर्ण एकाग्रता से मन के स्वाभाविक प्रवाह में बाधा उत्पन्न होती है। एकाग्रता से यथार्थ को नहीं जा सकता क्योंकि एकाग्रता से मानसिक द्वन्द्व या संघर्ष उत्पन्न होता है, द्वन्द्व से चित्त अशान्त हो जाता है और अशान्त मन को यथार्थ की सम्यक् चेतना नहीं हो सकती।

ध्यान-ध्यान से सत्य को जाना जा सकता है। ध्यान इच्छाशक्ति तथा प्रयासविहीन होता है। पलभर के लिए वह वस्तु हमारी चेतना के केन्द्र में होती है। उदाहरण के लिए कोई एक चिड़िया देखता है फिर उसका ध्यान फूल पर चला जाता है अर्थात् जानबूझकर व्यक्ति को ध्यान की वस्तु का चुनाव नहीं करना चाहिए उदाहरण के लिए कोई व्यक्ति क्रोध को पूरी तरह से अनुभव करना है जब तक उसका चित्त इस स्थिति में स्वभाविक रूप में रहता है इससे उसे लड़ना नहीं है न ही उसे दबाने की कोशिश करनी है।

ध्यान का उद्देश्य-ध्यान मन की सचेष्ट और प्रयोजनमूलक क्रिया है। ध्यान द्वारा मन कुछ समय के लिये कसी वस्तुविशेष पर केन्द्रित किया जाता है। यह वस्तु मूर्त व अमूर्त दोनों हो सकती है। ध्यान इच्छाशक्ति की कार्य करती है इसलिये इसका लौकिक या अलौकिक कोई न कोई प्रयोजन जरूर होता है। ध्यान द्वारा मन की एकाग्रता शक्ति बढ़ाना लौकिक प्रयोजन तथा ध्यान द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार करने की इच्छा अलौकिक प्रयोजन है। ध्यान में चंचल मन को किसी वस्तु पर टिकाने की कोशिश के बावजूद मन भटक जाता है। यह भटकाव एक बाधा है। ध्यान में प्रगति इस भटकाव को या व्यवधान को कम करती जाती है। किन्तु जे. कृष्णमूर्ति ऐसा नहीं मानते। उनके अनुसार ध्यान इच्छारतिह, चेष्टारहित तथा निष्प्रयोजन होता है तथा ध्यान हेतु चेतना का चुनावरहित होना आवश्यक है। ध्यान को प्रयोजनमूलक मानने से यह ध्यान साधन हो जाता है। इसके दो दुष्परिणाम होते है। प्रथम मन प्रयोजन या इष्ट विशेष से बंध जाता है जबकि मन स्वतंत्र होना चाहिए। द्विती य प्रयोजन विशेष होने से शेष सब गौण हो जाता है। व्यक्ति के ध्यान के मार्ग में गन्तव्य के अलवा आने वाला सब कुछ व्यवधान है परन्तु जीवन का कोई गन्तव्य नहीं है जीवन यात्रा में हर पल जो-जो घट रहा है वह सब ध्यान का विषय है। ध्यान के लिए चेतना का चुनावरहित होना आवश्यक है। व्यक्ति के मन में किसी समय स्वतः जो विषय उपस्थित होता है वही ध्यान का विषय है। ध्यान की अगली विशेषता चेतना की सम्पूर्णता है। ध्यानावस्था में अनुभूत चेतना शुद्ध होती है अर्थात् चेतना विशेष तैयारी की आवश्यकता नहीं होती है। जब भी फुरसत में हो किसी जरूरी काम में न लगे हो बैठे, चलते, लेटे ध्यान कर सकते है।

ज्ञान का स्वरूप-चयनात्मक साधारण ज्ञान के दोष है- 1. चयनात्मक ज्ञान विचारयुक्त होता है। जो यथार्थ विषयक नहीं हो सकता। 2. चयनात्मक चेतना मन में द्वन्द्व पैदा करती है। द्वन्द्व से चित अशान्त हो जाता है जिससे ध्यान प्रभावित होता है। 3. चयनात्मक होने से अप्रिय विषयों के मन में आने से उसे निकालने का संघर्ष करते है इससे मन में द्वन्द्व तथा द्वन्द्व से चित्त अशान्त हो जाता है। जबकि चयनविहीन चेतना विचार द्वारा प्रतिबन्धित नहीं है। सत्य या यथार्थ, विचार व भाषा दोनों से परे है। डॉ. कृष्णमूर्ति के अनुसार वर्तमान महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार के जीवन में प्रयोजन या लक्ष्य के लिये स्थान नहीं है क्योंकि लक्ष्य हेतु किया गया प्रयास वर्तमान से ध्यान विचलित करेगा और दूसरे भविष्य यथार्थ नहीं है। जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार बुद्धिमता विचार से भिन्न है, अपरोक्ष, प्रयासविहीन समझ है जो द्वन्द्व और उलझनरहित है। बुद्धिमत्ता व्यक्ति प्रज्ञ है।

* प्रोफेसर, श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर शिक्षा महाविद्यालय, सी.टी.ई. केशव विद्यापीठ, जामडोली, जयपुर
** प्रवक्ता, श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर शिक्षा महाविद्यालय, सी.टी.ई. केशव विद्यापीठ, जामडोली, जयपुर

शिक्षा से लक्ष्य- जे. कृष्णमूर्ति ने नौजवान विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए कहा था-''वास्तिविक रूप से शिक्षित होने के अर्थ करोड़ों-करोड़ों जो कर रहे हैं उसके अनुरूपता, उसका अनुकरण, उसे करना नहीं है। यदि तुम वह करना चाहते हो तो करो? परन्तु जो कुछ तुम कर रहे हो। उसके प्रति जाग्रत रहो।''

स्पष्ट है कि कृष्णमूर्ति परम्परा के विरुद्ध भी नहीं है। उनके अनुसार, ''शिक्षा का लक्ष्य नई पीढ़ी को एक नष्ट प्रकार के जीवन के लिए तैयार करना है। शिक्षा न तो ज्ञानार्जन है, न परीक्षायें पास करने और न डिग्रियाँ लेना और न योग्यताएँ बटोरना। कृष्णमूर्ति के शब्दों में, ''यह जानते हुये कि तुमको जीविकोपार्जन करना है, सम्पूर्ण जिम्मेदारियों को निभाना है, उन सब का दु:ख उठाना है। शिक्षा को तुम्हे एक पूर्णतया भिन्न-बुद्धिमत्तापूर्ण तरीके से संसार का सामना करने में सहायता करनी चाहिए।''

कृष्णमूर्ति ने देखा कि संसार में सब कहीं हिंसा है, विचारों में कार्य में हिंसा, शरीरिक हिंसा, दमन की हिंसा, आज्ञापालन की प्रतियोगिता की तथा स्वयं के प्रति भी हिंसा है। राष्ट्रीयता में, राष्ट्रों परस्पर सम्बन्धों में, समुदायों के परस्पर सम्बन्धों में हिंसा है। वास्तविक शिक्षा संसार में फैली अव्यवस्था के प्रति जागरूक होना तथा उससे मुक्त हो जाना है। कृष्णमूर्ति के अनुसार, ''वास्तविक शिक्षा एक जबर्दस्त व्यवस्था का जीवन जीना है, जिसमें आज्ञापालन को समझ लिया जाता है, जिसमें यह ज्ञान लिया जाता है कि कहाँ अनुरूपता आवश्यक है और कहाँ वह पूर्णतया अनावश्यक है, यह देख लिया जाता है कि कब अनुकरण कर रहे हैं।'' साधारणतया शिक्षा का अर्थ पुस्तकों को पढ़ाना, जानकारी का संग्रह करना और उसे या तो स्वार्थ के लिए या किसी विशिष्ट कारण के लिए, किसी विशेष सम्प्रदाय के लिये स्वयं को उस सम्प्रदाय में अथवा संगठन में महत्त्वपूर्ण बनाने के लिए प्रयोग किया जाता है।

शिक्षा का महत्त्व-जे. कृष्णमूर्ति ने नई पीढ़ी की समस्याओं पर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने दु:ख व्यक्त किया कि अधिकतर बालक अपने माता-पिता या सम्मान नहीं करते, वे उनकी नहीं सुनते, उनके प्रतिमानों को अपनाना नहीं चाहते। उनकी परवाह नहीं करते। जे. कृष्णमूर्ति उसका कारण बच्चों का पालन-पोषण मानते है उनको प्रारम्भ से ही सही शिक्षा, सही प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। परन्तु जे. कृष्णमूर्ति परम्परावादी नहीं थे। उनके अनुसार हमें एक ऐसी पीढ़ी का निर्माण करना चाहिए, जो निर्भय हो, जो भूत से सहमत न हों, जिसमें बुद्धि हो और जो विवेक से काम ले सकते हों। हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली दोषपूर्ण है। उसके ज्ञानार्जन अधिक जोर दिया गया है। वह जीवन की सम्पूर्ण समस्या को समझने के लिये पर्याप्त संवेदनशीलता और बुद्धि का विकास नहीं करती वास्तविक शिक्षा को न केवल ज्ञानार्जन के योग्य बनाना है, बल्कि संसार की ओर वस्तुगत तरीके से देखना सिखाना है। कृष्णमूर्ति के शब्दो में, ''शिक्षा का कार्य तुम्हें एक पूर्णतया मित्र, बुद्धिमतापूर्ण तरीके से संसार का सामना करने में सहायता करना है।''

शिक्षक का कार्य-शिक्षक का कार्य पुस्तकीय ज्ञान के साथ-साथ शिक्षार्थी को स्वयं को जानने में सहायता करना है। शिक्षा प्रक्रिया में निर्मित विषयों के ज्ञान के साथ-साथ बुद्धि के विकास और मूल प्रवृत्तियों के व्यवहार में अन्तर्दृष्टि उत्पन्न की जानी चाहिए। परन्तु वर्तमान शिक्षा प्रणाली में यह सब नहीं होता। इसलिए निरर्थक प्रतिमान जीवन के प्रति नई पीढ़ी में विद्रोह को कृष्णमूर्ति स्वाभाविक मानते है।

गुरु शिष्य सम्बन्ध-जे. कृष्णमूर्ति ने कहा, ''शिष्य का अर्थ जो सिखता है, परन्तु शिष्य का साधारणतया स्वीकृत अर्थ वह है, जो किसी का, किसी गुरु का किसी बुद्धिहीन व्यक्ति का अनुकरण करता है, ऐसी स्थिति में गुरु और शिष्य दोनों नहीं सीख रहे हैं।''

स्वतन्त्रता और अनुशासन-कृष्णमूर्ति के अनुसार सही शिक्षा प्रक्रिया में पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए ताकि मस्तिष्क की सम्पूर्ण सामर्थ्य का प्रयोग किया जा सके। शिक्षा को बालक की स्वयं की अभिव्यक्ति हेतु पूर्ण अवसर उपस्थित करने चाहिए। शिक्षित व्यक्ति को इस संसार में बुद्धिमत्ता और समझदारी का जीवन जीना चाहिए। कृष्णमूर्ति के शब्दों में ''शिक्षा को हमें समझदार, अभान्त्रिक और बुद्धिमान होने में सहायक होना चाहिए।''

शिक्षा बुद्धि उत्पन्न करती है जो इस जगत में कार्य करती है। शिक्षा द्वारा वर्तमान जीवन की पूर्ण चेतना मिलनी चाहिए। भूत और भविष्य के विचारों से स्वतन्त्रता वर्तमान बौद्धिक जीवन व्यतीत करने में सहायक करने वाली होनी चाहिए।

कृष्णमूर्ति के अनुसार प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति को संसार को अपनी आंखों से देखना, अपनी बुद्धि के अनुसार विचार करना और पूर्ण स्वतंत्रता से कार्य करना आना चाहिए। उसे किसी भी गुरु, संस्था, पुस्तक, विचाराधारा का अन्धानुकरण नहीं करना है। उसे आत्मस्थित होकर स्वयं अपनी बुद्धि से वर्तमान में रहकर जीवन जीना है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. चौरासिया, राजेश कुमार: ''जे. कृष्णमूर्ति मानव स्वातंत्र्य'' विश्वविद्यालय प्रकाशन, सागर म.प. , 2008 2. कृष्णमूर्ति, जे. शिक्षा क्या है? कृष्णमूर्ति फाण्डेशन इण्डिया राजघाटफोर्ट, वाराणसी उ.प्र. 2008, 3. कृष्णमूर्ति जे. ''ज्ञात से मुक्ति'' कृष्णमूर्ति राजघाटफोर्ट वारणसी उ.प्र. 2004 4. टिकेकर, इन्दु, : ''जीवन और दर्शन'' सर्वसेवा प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी उ.प्र. 2001